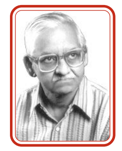

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 सितम्बर-2012 अंक-9

ध्यान शिविर में आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

दि० 8, 9 व 10 सितम्बर, 2012 (शनिवार, रविवार, सोमवार)
पंजाबी धर्मशाला (राजगुरु मार्केट), आर्य बाजार, हिसार
फोन : 9416164702, 9416041346

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

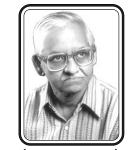

(1936-2009)

अखण्ड शक्ति

✍ डॉ० शम्भू नाथ

अखण्ड शक्ति का अर्थ है: अखण्ड द्वारा प्रदान की हुई शक्ति। अखण्ड ईश्वरीय तत्व को कहते हैं।

ईश्वरीय तत्व का विभाजन नहीं हो सकता।

ईश्वरीय शक्ति और अखण्ड शक्ति पर्यायवाची हैं।

हमारे पास दो दुनियां हैं-अन्दर की दुनियां (Absolute Field) और बाहर की दुनियां (Relative Field)। अन्दर की दुनियां में ईश्वरीय शक्ति बाहर की सारी शक्तियों के आधार के रूप में रहती है। आत्मा के क्षेत्र में यह निर्गुण निराकार हैं लेकिन परा के क्षेत्र में सगुण निराकार है। इन्द्रिय के क्षेत्र में यह सगुण साकार है। सगुण साकार अवतार के रूप में हो सकता है।

लेकिन शक्ति का रूप सगुण साकार कैसे हो सकता है?

शक्ति हमेशा ही निराकार रहती है। इसलिए बाहर की दुनियां में आते ही ईश्वरीय तत्व निराकार शक्ति के रूप में तो रहता है: लेकिन सगुण हो जाता है। जो अपने घर में किसी का पिता, पति या भाई के रूप में है: वही दफ्तर में डॉक्टर, इन्जीनियर या किसी उच्च अधिकारी के रूप में होता है और खेल के मैदान में वही केवल खिलाड़ी के रूप में।

ठीक इसी तरह अखण्ड शक्ति भी अन्दर और बाहर की दुनियां में अलग-अलग गुणों के रूप में रहती है।

ईश्वरीय तत्व सच्चिदानन्दस्वरूप है। आत्मा की शक्ति किसी शक्ति के रुप में मन में प्रगट होगी: तो वह केवल सत्, चित् और आनन्द के रूप में ही प्रगट होगी। ध्यान के समय मन आत्मा के क्षेत्र में भ्रमण करके बिल्कुल ऐसे ही लौटता है: जैसे कपड़ा रंगते समय, कपड़ा रंग की

दुनियां में भ्रमण करके बाहर आता है। दूसरे शब्दों में ईश्वरी तत्व को पिरो कर ही मन बाहर आता है। अर्थात् ईश्वरीय तत्व के गुण सबसे पहले मन में ही उभरेंगे। आनन्द: मन और ईश्वरीय तत्व के सम्पर्क की अनुभूति है: जो मन को होती है और मन के आन्तरिक सुख के रूप में होती है। सत् और चित् के गुण मन में कुछ देर से उभरते हैं: कहने का तात्पर्य यह है कि उनका अनुभव कुछ देर में होता है। जब मन ईश्वरीय तत्व के सम्पर्क में रहने लगता है; तो ईवरीय तत्व मन पर धीरे-धीरे अपना प्रभाव डालता है। इस प्रभाव की अनुभूति के रूप में ही ईश्वरीय तत्व के सत् और चित् गुणों का अनुभव होता है। समाज में यह सत् अखण्डता के नाम से और चित् मन की जाग (Consciouness) के नाम से जाना जाता है।

ईश्वरीय तत्व का प्रभाव होते ही: सबसे पहले आनन्द की अनुभूति होती है। दूसरे शब्दों में ईश्वरीय शक्ति की पहिचान पहले आनन्द के रूप में होती है। आनन्द वह सुख है: जो पाँच ज्ञानेन्द्रियों की भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। (Can not be expressed in the language of the five senses).

उदाहरण के लिए जब हम काम करते-करते थक जाने की वजह से सो जाते हैं और सो कर उठने पर: या तो यह कहते हैं कि नींद न आने से सिर में दर्द है, बदन टूट रहा है; या यह कहते हैं कि इतनी गहरी नींद आयी कि आनन्द आ गया। ऐसा कोई नहीं मिलता जिसने कभी यह कहा हो; कि इतनी गहरी नींद आयी कि हम दु:ख से भर गए। यही इस बात का प्रमाण है: कि सोने में कोई सुख उभर आया और वह कैसा सुख है? शब्दों में किसी को बताया नहीं जा सकता।

यही ईश्वरीय तत्व की अनुभूति; आनन्द है। इसी आधार पर ध्यान की वह विधि निकाली गई; जिसमें ध्यान के समय कुछ करना नहीं है।

हम जब भी कोई काम करते हैं, तो करने का कुछ ध्येय अवश्य होता है। समय बीतने के साथ-साथ हमें हमेशा यह मालूम होना चाहिए: कि हम ठीक रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं या नहीं? अगर हम अपने अन्दर ईश्वरीय शक्ति बढ़ाने के रास्ते पर चल रहे हैं: तो हमें निरन्तर इस बात का अनुभव होना चाहिए कि हम अपने ध्येय की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

> **जब ईश्वरीय शक्ति के उभरने से स्वास्थ्य ठीक होगा: तो वह प्रकृति की अन्दर की शक्ति के सहारे होगा; न कि प्रकृति की बाहर की अलग-अलग शक्तियों के आधार पर।**

अन्दर की शक्ति के उभड़ने का अनुभव हमें आनन्द के रूप में ही करना चाहिए। दूसरे शब्दों में-'ईश्वरी शक्ति उभर रही है।'' अगर हम ईश्वरीय शक्ति के उभरने को बढ़ते हुए आनन्द के रूप में अनुभव करने की कोशिश करेंगे: तो गलती की कोई सम्भावना नहीं होगी।

अखण्ड की शक्ति का स्वरूप

इस शक्ति का स्वरूप क्या है? ईश्वरीय तत्व सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह वाक्य इस बात की पुष्टि करता है: कि ईश्वरीय शक्ति के गुण ही इसका रूप हैं। इसका कोई आकार नहीं है। शक्ति का आकार हो ही नहीं सकता। ईश्वरीय तत्व के तीन गुण सत्, चित्त और आनन्द हैं: जो कि ईश्वरीय तत्व के रूप का भी काम करते हैं।

आनन्द की शक्ति

जिस तरह से हर कण सूक्ष्म और स्थूल पर्तों में बंट जाता है: उसी तरह यह जगत भी सूक्ष्म और स्थूल पर्तों में बंटा है। सूक्ष्म जगत को ही अन्दर की दुनियां कहते हैं। इस जगत में कर्म तो होते हैं (विचार तो उठते हैं), लेकिन क्रियाएं नहीं होतीं। यह कर्मेन्द्रियों से परे का जगत है। इस जगत को मन स्वयं इस जगत के आनन्द (Bliss) और चित् (होश, Conscious) के माध्यम से अनुभव करता है। कहने का अर्थ यह है: कि दोनों ही जगत

अपने-अपने सुख से भरे हुए हैं।

सूक्ष्म जगत आनन्द से पूर्ण है; और क्रियाओं का जगत जीवन के अलग-अलग पहलुओं के सुख से पूर्ण है।

मन सुख का भूख है।

दो तरह के मनुष्य देखे जाते हैं। कलियुग का एक साधारण मनुष्य केवल बाहर के तरह-तरह के सुख की ओर हर क्षण खिंचा हुआ है। बहुत से महात्मा भी मिलते हैं; जिनका अधिकतर समय केवल ध्यान या समाधि में बीतता है। दोनों की अवस्थाओं में क्या अन्तर है? मन सुख का भूखा है। इसलिए उसे वह सुख चाहिए जो सुख की भूख मिटा सके। केवल आनन्द ही वह सुख है: जो मन के सुख की भूख को मिटाने की शक्ति रखता है। बाहरी जगत के अलग-अलग पहलुओं के सुखों में यह शक्ति नहीं है: कि मन के सुख की भूख मिटा सके।

यदि यह सच है; तो प्रश्न यह उठता है: कि आज का मनुष्य बाहरी सुख की ओर; क्यों इतना मुड़ा हुआ है?

उत्तर यह है: कि मन अन्दर के सुख का रास्ता ही भूल चुका है। आज के समाज में जन्मे व्यक्ति उन व्यक्तियों के बीच में हैं: जो अपने बच्चों को अन्दर के सुख का रास्ता नहीं दिखा सकते। सच तो यह है कि हर पिता स्वयं अपने बच्चों को बाहर के जगत के पहलुओं (दूसरे शब्दों में बाहर के जगत के तरह-तरह के सुखों) की ओर पूरी शक्ति से मुड़ने में मदद करता है।

बाहर का सुख समुद्र के खारे पानी के समान है। बाहर का सुख केवल सुख की तड़पन बढ़ाता है। सुख की भूख नहीं मिटाता।

मनुष्य इतना ज्यादा अज्ञानी हो गया है: कि उसे कभी शक भी नहीं

होता; कि कोई ऐसा भी क्षेत्र है: जहां पर सुख की भूख मिटाने वाले सुख के होने की सम्भावना भी है? जिस दिन यह शक, जिसके मन में हो जाता है: उसी दिन से उसकी दूसरे जगत की खोज शुरू हो जाती है। मन की यह अवस्था; जब कि उसे कुछ शक होने लग जाता है: शास्त्रों में विषाद योग की अवस्था के नाम से प्रचलित है।

ऊपर की बातों का सारांक्ष यह निकला कि आज के साधारण मनुष्य का मन बाहर की दुनियां में वह सुख ढूंढ रहा है: जो कि बाहर के जगत में है ही नहीं। यही जीवन के सारे दुःखों का कारण है।

जो वस्तु जहां पर है ही नहीं: वह वहां मिल कैसे सकती है? यदि हम अपने किसी घर में ताला लगा कर काफी समय के लिए कहीं बाहर चले जायें तो: जब लौटकर वापस आते हैं, तब तक काफी सफाई न कर लें; घर में बैठना ही मुश्कि होता है। बिल्कुल इसी तरह जिस मनुष्य की आयु तीस-चालीस साल हो गई है; और इन तीस-चालीस साल में भले ही अचेत (निद्रा) अवस्था में आन्तरिक क्षेत्र में आया-गया हो? लेकिन उसके मन के चेत स्तर (Conscious level of the mind) ने चेत (जागृत) अवस्था में कभी सूक्ष्म जगत में प्रवेश नहीं किया। आज बहुत दिनों बाद: यदि करना भी चाहता है, तो उसे यह रास्ता उसी तरह बन्द दिखायी पड़ता है: जैसा कि हमने ऊपर के उदाहरण में देखा कि मनुष्य अपने घर में भी बिना सफाई के नहीं घुस पाता।

यह सूक्ष्म जगत का रास्ता: धीरे-धीरे किस तरह इस योग्य हो जाए कि मन का चेत स्तर: चेत अवसथा में सूक्ष्म जगत में भ्रमण कर सके? यही ध्यान योग का ध्येय है।

ऐसी शिक्षा की जरूरत उन प्राणियों को है, जिनका चेत स्तर: हमेशा बाहर खिंचा रहता है। उसे कोई सही शिक्षक मिल जाता है: तो धीरे-धीरे मन

की वह अवस्था जागृत होती है; कि समय बीतने के साथ-साथ मन का चेत स्तर: सूक्ष्म; और सूक्ष्म जगत में प्रवेश कर सके। ज्यों-ज्यों वह मन के सूक्ष्मतम् क्षेत्रों में विचरण करने योग्य होता जाता है: त्यों-त्यों इन सूक्ष्मतम् क्षेत्रों में उसे वह आनन्द मिलता है; जिसे वह न मालूम कितने समय से; या पता नहीं शायद कितने जन्मों से अज्ञानता-वश वहां ढूंढ रहा था: जहां वह है ही नहीं। ज्यों-ज्यों उसे यह आनन्द मिलता है: धीरे-धीरे उसका मन इस क्षेत्र की ओर खिंचने लगता है।

अन्दर का आनन्द मन को अन्दर खींचता है। बाहर का सुख मन को बाहर खींचता है। और मन की अवस्था धीरे-धीरे ऐसी होने लगती है: जैसे रस्साकशी का खेल।

अब एक प्रश्न उठता है कि मन बाहर से अन्दर की ओर एकदम क्यों नहीं मुड़ जाता? अन्दर की ओर मुड़ने में क्यों समय लगता है? उत्तर बहुत आसान है: सूक्ष्म जगत, जोकि अनन्त तक फैला है; उसमें मन अन्दर प्रवेश करके पूरे सूक्ष्म जगत की सफाई एक बार में नहीं कर पाता। सूक्ष्म स्तर के हर क्षेत्र में सफाई धीरे-धीरे ही होती है। अन्दर के जगत में स्नायु संस्थान (Nervous System) की सफाई (Culturing) होनी है। और जिस स्तर की सफाई हो पाती है: केवल उसी अनुपात में वह आनन्द पैदा होता है; जिसके आधार पर मनुष्य का खिंचाव अन्दर की ओर बढ़ता है और बाहर की ओर कम होता है। यही कारण है कि केवल ध्यान के लम्बे अभ्यास के बाद ही: मन का खिंचाव बाहर की दुनियां की ओर से कम होता है।

यह अन्दर का सुख ही अखण्ड शक्ति है। सूक्ष्म जगत की सफाई करने का अर्थ होता है: मन, बुद्धि, शरीर और वातावरण के अलग-अलग स्तर के विकारों का निकलना। शारीरिक विकार, करोड़ों पर्तों की थकावट और तरह-तरह की बीमारियों के बीज के रूप में शरीर में समाए रहते हैं।

तरह-तरह के भावात्मक (emotional) सुख और दु:ख मन के विकार के रूप में समाए रहते हैं।

क्रियाओं को कौन-सी दिशा दी जाए? इससे सम्बन्धित समस्याएं बुद्धि के विकार के कारण उत्पन्न होती रहती हैं और वातावरण की अशुद्धता के कारण तरह-तरह की घटनाएं जीवन में उतार-चढ़ाव लाती रहती हैं।

यही वातावरण के विकार हैं। और सभी विकार मन को बाहर खींचने और अन्दर के आनन्द को ढकने की कोशिश करते हैं। ध्यान के अभ्यास से हमारी अखण्ड शक्ति आनन्द के रूप में उभरती है और; उभरने के साथ-साथ हमारे विकारों को भी उभार देती है। ये विकार अनन्त तरह के और अनन्त अवस्थाओं में रहते हैं। सिद्धांत की बात यह है: कि हर तरह के विकार की अवस्था कुछ भी हो-ध्यान द्वारा उभड़ने लगते हैं।

किस समय कितनी गुत्थियां टूटने की वजह से अचानक कितना आनन्द उभरेगा? इसको बुद्धि के स्तर पर कभी समझा नहीं जा सकता।

अब यह समझना आसान है: कि ध्यान करने वालों का जीवन धीरे-धीरे कैसे बदलता है? यह हो सकता है कि जब वे बाहर किसी काम में व्यस्त हों: अचानक संस्कार की कोई गुत्थी टूटे, और ऐसा आनन्द उभरे; जिसमें इतनी शक्ति हो कि वह मन को लीन कर ले। दूसरे शब्दों में मन को अन्दर की ओर खींच ले जाये; और बाहर की क्रिया अपने-आप रुक जाए। आवश्यक रूप से समझने की बात यह है: कि ऐसा ''होता'' है, ऐसा करना नहीं है। अन्दर के आनन्द की ओर क्रियाओं के दौरान मन अपने-आप मुड़ जाता है; मोड़ा नहीं जाता। ध्यान के समय चेतना के चेत स्तर को अन्दर की ओर, बाहर के सुखों में ताला लगा कर; और चेतना के स्वाभाविक स्वभाव का फायदा उठा कर: मोड़ देते हैं (मन का स्वाभाविक

स्वभाव है: आनन्द की ओर भागना)। ध्यान के सभी अभ्यास करने वालों की यह अनुभूति है: कि ध्यान के दौरान भी मन कभी अधिक आनन्द अनुभव करता है; और कभी बिल्कुल ही नहीं करता।

> **कारण यही है: कि अन्दर की अखण्ड शक्ति आनन्द के रूप में संस्कारों की गुत्थियों की अवस्था के आधार पर उभरती है: मन के चाहने पर नहीं।**

ऊपर जिस आनन्द के उभरने के क्षणों की बात की गई है: ये क्षण जीवन में ध्यान के अभ्यास के आधार पर बढ़ते हैं। अब यह समझना आसान है; कि ये क्षण जीवन में धीरे-धीरे ही क्यों बढ़ते हैं? और जिस अनुपात में बढ़ते हैं; केवल उसी अनुपात में धीरे-धीरे मन का खिंचाव अन्दर की ओर बढ़ता है। और बाहर के क्षेत्र की व्यस्तता अपने-आप कम होती जाती है।

> **व्यस्तता कम करने से अखण्ड की शक्ति बिल्कुल नहीं उभरती। लाभदायक क्रियाओं में व्यस्तता बढ़ाने से भी अखण्ड शक्ति नहीं उभरती।**

अखण्ड की शक्ति शिक्षा के आधार पर बढ़ती है। ऊँचे स्तर के विद्यार्थी हमेशा ही एक साथ ज्यादा देर तक पढ़ने योग्य रहते हैं। लेकिन ऐसा छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों के साथ असम्भव है। बिलकुल इसी तरह वे, जो अध्यात्म की शिक्षा की ओर मुड़ जाते हैं: जीवात्मा के उत्थान से सम्बन्धित बातों को समझने की भी कोशश करते हैं। वे ध्यान के अभ्यास में भी अधिक समय देते हैं। ज्यों-ज्यों जीवात्मा की अवस्था के अनुसार अभ्यास में भी अधिक समय देते हैं: त्यों-त्यों जीवात्मा की अवस्था उच्च स्तर की होने लगती है। त्यों-त्यों वे क्षण बढ़ने लगते हैं: जब मन अन्दर की ओर ज्यादा खिंचा रहता है और बाहर की व्यस्तता कम होने लगती है। अन्दर के खिंचाव की तीव्रता (intensity) ही: वह

चिन्ह है जिसके द्वारा मनुष्य हमेशा ही अपनी परख (test) कर सकता है: कि उसके अन्दर अखण्ड की शक्ति बढ़ रही है या नहीं?

जब जीवन में आनन्द में डूबने के क्षण धीरे-धीरे बढ़ते ही चले जायेंगे: तो एक समय ऐसा भी आयेगा; जब कि मन हर समय अन्दर के आनन्द में डूबा रहे: चाहे यह जाग्रत अवस्था हो, चाहे स्वप्न की अवस्था; या घोर निद्रा की। ❑

अरे कोई तो कारण होगा ?

✍ **श्रीमती नाशा (09254541744)**

इक झोली में फूल भरे हैं, इक झोली में कांटे।
तेरे बस में कुछ भी नहीं है, यह तो बांटने वाला बांटे॥
.....अरे कोई तो कारण होगा?
पहले बनती हैं तकदीरें, फिर बनते हैं शरीर।
यह तो प्रभु की है कारीगरी, तू क्यों भ्या गम्भीर?
.....अरे कोई तो कारण होगा?
नाग भी डस जाये, तो मिल जाए किसी को जीवन दान।
चींटी से भी मिट सकता है, किसी का नामो निशान॥
.....अरे कोई तो कारण होगा?
धन का बिस्त्र मिल जाये, पर नीन्द को तरसे वैन।
कांटों पर भी सोकर आये, किसी को मन की चैन॥
.....अरे कोई तो कारण होगा?
सागर से भी बुझती नहीं, कभी किसी की प्यास।
कभी एक ही बून्द से, हो जाती है पूर्ण उसकी आस॥
.....अरे कोई तो कारण होगा?

धर्म सत्ता क्या है ?

✍ महर्षि श्री महेश योगी

जब धर्म सत्ता को मालूम कर लोगे-भावातीत हो जाओगे तो फिर ''निर्द्वन्दो नित्य सत्वस्थो, निर्योग क्षेम आत्मवान'' (2.45) लाभ तथा रक्षा के द्वैत भाव से मुक्त एवं नित्य शुद्ध आत्मा में स्थित हो जाओगे। क्योंकि धर्म सत्ता ही सबको धारण करने वाली है। जिसका उससे सम्बन्ध हुआ, जो सबके आधार में खड़ा हो गया: वह निर्द्वन्द हो गया, उसके सब काम सतोगुण प्रधान होंगे अर्थात् जीवन पोषणकारी होंगे। जीवन के विकास क्रम के अनुसार काम अपने आप होंगे। सहज स्वभाव से होंगे। फिर मारो या न मारो। यदि मारने का काम धर्मानुसारी है, क्योंकि धर्म सत्ता जो अदृष्ट है: उससे पोषित होगी तो मार दोगे। यदि धर्म सत्ता उससे बाधित होगी: तो न मारोगे। क्यों कि मारना भी दो किस्म का होता है: एक ऐसा होता है कि सारी सृष्टि में जो जीवन को क्षति पहुंचाने वाला प्रभाव व्याप्त था, प्रकृति दूषित हो गयी थी, क्षोभ सर्वत्र हो रहा था: उसको नाश करने के लिये भगवान् आते ही हैं-

''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'' (4.8) भक्तों के उद्धार, दुष्टों के संहार एवं दुष्कृतियों के विनाश के लिये धर्म सत्ता पोषक होती है, उसका क्षोभ नष्ट होता है। इसलिये मारना धर्मानुसारी हो गया। काम वही है: तो एक स्थान पर धर्मानुसारी हो गया; और एक स्थान पर धर्म के विपरीत हो गया। इसलिये धर्म-अधर्म का जो निर्णय है: वह कोई मानवी बुद्धि से नहीं कर सकता।

इसलिये कि बुद्धि त्रिगुणात्मक होती है; और धर्म का क्षेत्र त्रिगुणातीत। सबका आधारभूत होता है। इसलिये कहते हैं कि शास्त्र के अनुसार

काम करो। 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यस्थितौ' (16.24) अतएव मनुष्य को यह जानना चाहिए कि शास्त्रों के विधान के अनुसार: क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है?

शास्त्र ही प्रमाण हैं धर्माधर्म में, कर्म-अकर्म में। तो उस धर्म सत्ता का भगवान् ने अर्जुन से सम्बन्ध कराया और उसका व्यवहार में कितना ओतप्रोत सम्बन्ध है: यह बताया। व्यवहार करने के लिए कहा-

''योगस्थः कुरु कर्माणि'' (2.48) योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को करो। ये भगवान् के उपदेश पक्ष हैं। सबसे पहले उन्होंने एक सामान्य दृष्टि दी: कि एक अखण्ड, अविनाशी, शाश्वत चेतना है: जो तुम्हारे भीतर है और वह तुम्हारा नित्य स्वरूप है। और बाहर वाला यह क्रिया कलाप का व्यावहारिक स्वरूप तुम्हारा नश्वर है। यह सांख्य की बुद्धि दी। फिर कहते हैं: तुमको योग की बुद्धि देते हैं। योग की बुद्धि ऐसी देते हैं: कि तुम्हारे विनाशी क्षेत्र में रहने वाली बुद्धि उस अविनाशी नित्य अखण्ड सत्ता से सम्बन्धित हो जायेगी। उसके लिये (2.40) में कहते हैं।

'नेहाभिक्रम नाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'॥
आरम्भ इसमें है अमिट, यह विघ्न बाधा से परे।
इस धर्म का पालन तनिक भी, सर्व संकट को हरे॥

''न इहि अभिक्रम नाशः अस्तिः'' जब मन बाहर से, व्यवहार से, भीतर, पारमार्थिक सत्ता अखण्ड आत्मा की तरफ चलने वाला लगता है: तो फिर इस क्रम का, इस चाल का नाश नहीं होता। अर्थात् यह बीच में रुकती नहीं। मन जो चला: तो पूरा का पूरा चला। क्योंकि

'प्रत्यवायो न विद्यते' (2.40) विघ्न बाधा से परे है। बीच में कोई रोक

नहीं है। इसलिये कि वह मन का सहज स्वभाव है।

मन क्या है? आनन्द सत्ता के सागर की एक लहर है।

तो वह लहर उसी की ओर चलती है-कभी उठती है, कभी बैठती है। उठना भी स्वाभाविक है, बैठना भी स्वाभाविक है।

हर एक का मन आनन्द चाहता है। वह आनन्द की लहर आनन्द सागर में एक हो जाना चाहती है। सदैव मन की यही चाल है। तो आनन्द चाहने वाला मन आनन्द सागर की ओर जिस समय चलता है: उसकी चाल रुकती नहीं, इसलिए कि वह मन की सहज-स्वाभाविक गति है, उसमें कोई अवरोध नहीं होता है।

अवरोध इसलिये नहीं होता है: कि लम्बा चलना नहीं पड़ता। जहां मन को जाना है: वह अखण्ड शक्ति व्यापक है। इसलिये जाना कहीं नहीं है: केवल वहीं के वहीं मिल जाना है।

बीच में कुछ अन्तर है ही नहीं: तो प्रत्यवाय होगा कैसे?

यदि यहां से चलकर वहां जाना हो: तो कुछ प्रत्यवाय हो सकता है। पर यहां तो जहां से अभिक्रम हुआ: वहीं अनुभव हो गया। जिस चीज का अनुभव करना है: वह व्यापक है। चलने और पहुंचने की क्रिया में कोई देर नहीं लगती। क्योंकि जहां पहुंचना है: वह वहीं है; जहां से चलना चाहते हैं। इसलिये प्रत्यवाय नहीं है। यह जीवन का सहज, स्वाभाविक लक्षण है।

मन और आत्मा के बीच कोई दूरी नहीं है। जब दूरो नहीं है तो मार्ग लम्बा कैसे होगा? व्यापक सत्ता के अनुभव में मार्ग ही सिद्ध नहीं होता।

''**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्**''(2.40): यदि मन आत्मा की ओर जरा सा गया, योग बुद्धि जरा सी हो गयी-मन जरा सा आत्मानन्द

अनुभव करने लगा: तो

''**त्रायते महतो भयात्:**'' महान भय से मुक्त करता है। इसलिये कि जहां बुद्धि तनिक भी पारमार्थिक बनी तो

''**द्वितीयात् वैभयम् भवति**'' जो द्वैत के रहने से भय होता है: वह द्वैत नष्ट होते ही भय नष्ट हो जाता है।

अद्वैत का अनुभव वहीं का वहीं हुआ, द्वैत रह ही नहीं गया, भय का क्षेत्र ही समाप्त हो गया।

'**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य**'-कौन सा धर्म? चलना नहीं वरन् योग। योग बुद्धि दे रहे थे और योग तो तुरन्त हो जाता है। थोड़ा आरम्भ हुआ और योग हुआ,

मन को आत्मा से मिलने में क्या देर लगती है?

मन आनन्द का प्यासा: और आत्मा आनन्द रूप वहीं। जहां प्यासा: वहीं आनन्द का सागर: बस गोता लगा लिया। इसलिये

''**त्रायते महतो भयात्।**'' कोई भी ऐसा भय नहीं: जिससे त्राण न हो। यह अर्जुन के लिये उपदेश है जहां उसको धर्म के भंग होने का भय हो गया था। गुरुजनों को मारेंगे तो पता नहीं क्या होगा? भगवान् ने कहा ''**त्रायते महतो भयात्**''-बस मन का आत्मा से योग हो जाये। महान भय से तुरन्त मुक्ति। आगे (2.45) में कह दिया। वेदों में मुख्यता प्रकृति के तीनों गुणों का वर्णन हुआ है। हे अर्जुन ! इन तीनों गुणों से ऊपर उठो।

''**निस्त्रैगुण्योः भव**'। ''**त्रैगुण्य विषया वेदा**'-अर्जुन तो कह रहे थे-कुल-धर्म, जाति-धर्म आदि: ये सब वैदिक सिद्धांत के अनुसार बिल्कुल सही बात बोल रहे थे। भगवान् ने कहा-यह तो त्रिगुणात्मक सत्व, रजो तथा तमो गुण का क्षेत्र है: इसी के लिये वेद का उपदेश है।

जितना भी वेद ने उपदेश दिया है: वह व्यवहार के लिये ही तो दिया है-यह करो, वह ना करो। यह समस्त व्यावहारिक क्षेत्र में वेद का उपदेश है। भगवान कहते हैं: कि इस क्षेत्र के बाहर जो सत्ता है, उसका जरा निरीक्षण कर लो। अर्जुन को दिग्दर्शन कराया।

तमाम टीकाकारों ने कर्मकाण्ड को और वेद के उपदेश को इसकी व्याख्या करते हुए बहुत नीचा दिखाया है। भगवान् ने अर्जुन से कहा-जिस क्षेत्र की बात तुम: कह रहे हो: वह वैदिक उपदेश का क्षेत्र है। जिसके बाहर एक और क्षेत्र है। चलो जरा उसको देख लो।

''**त्रैगुण्य विषया वेदा**'' इतना कह कर भगवान् ने अर्जुन के सारे तर्क किनारे कर दिये-एक एक तर्क का उत्तर नहीं दिया। यह नहीं कहा कि तुम ठीक कह रहे हो क्योंकि वेद शास्त्र के उपदेश के अनुसार है।

''**त्रैगुण्य विषय वेदा**'' वेदों में मुख्यतया प्रकृति के तीनों गुणों का वर्णन हुआ है। कहने का तात्पर्य यही है कि जितनी बातें अर्जुन ने रखीं भगवान् ने उन सबका समर्थन किया लेकिन कहा कि

''**निस्त्रैगुण्यों: भवार्जुन**' यह त्रिगुणात्मक क्षेत्र है, तुमको त्रिगुणातीत सत्, चित्त एवं आनन्द का क्षेत्र दिखलाते हैं।

इस क्षेत्र में आने से क्या होगा?

'**निर्द्वन्दो**'-**निर्द्वन्द क्यों?** पहले कह आये हैं ''**त्रायते महतो भयात्**'। जहां भय निवृत हुए-

'**निर्द्वन्दो नित्य सतवस्थो**' **फिर जब व्यवहार की बुद्धि होगी: तो सत्व में प्रतिष्ठित होगी। जीवन के सर्वोच्च क्षेत्र से काम करोगे तो फिर जीवन के विकास का जो क्रम है: उसमें बाधा नहीं पड़ेगी। सब कर्म धर्मानुसारी होंगे-अपने आप होंगे।** ❑

अंतर्यात्रा

✍ महायोगी श्री पायलट बाबा

मनुष्य शरीर का मिलना अपने आप में परमात्मा की अनंत कृपा का द्योतक है। इस मनुष्य देह में रहते हुए ही हमें इस संसार को जानना है और आध्यात्मिक जगत की यात्रा भी करनी है। संसार को भोगना है, क्योंकि संसार बना ही इसलिए है। तुम्हारी सत्ता की पहचान भी यह संसार ही देता है। यह शरीर रूपी घर तुम्हें मिला है: परंतु यह तुम्हारा नहीं है। इस शरीर की सार्थकता तभी है: जब इस देह में रहते हुए हम उस परमसत्ता को जान सकें। वह परमसत्ता केवल शरीर के रहते ही जानी जा सकती है।

संसार के बिना जगत का बोध नहीं; और
शरीर के बिना तुम्हारे व्यक्तिगत का परिचय नहीं।

शरीर से ही, मन से ही: आत्मा को जाना जाता है। शरीर के बिना संसार का भोग नहीं और शरीर के बिना आत्मबोध को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। तुम्हें दोनों को अनुकूल बनाकर जगत और परमतत्व को जानना है। संसार में रहना और अपने आपमें यात्रा करना है।

जो संसार मिल गया है; उसी के लिए पुन: प्रयत्न क्यों करना?

इसीलिए स्थित प्रज्ञ बनें-अपनी अंतर्यात्रा की ओर जाने के लिए, अपने सर्वांगीण विकास के लिए। इसलिए तुम जीवन में कुछ समय के लिए ठहरो। सोर संसार को चलने दो, बहने दो, उछलकूद करने दो; परंतु तुम सिमट जाओ।

उसी तरह जैसे कछुए पर प्रहार करने पर भी उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है और वह स्वयं को समेट लेता है।

जैसे योगी अपने आप में बैठ जाता है, बाह्य मन से सो जाता है। तन को जड़ बना देता है और अंतर्मन से जाग जाता है। तुम्हें भी बाह्य इन्द्रियों को

शांत करना है। बाह्य स्पंदन से, स्पर्श से, स्वाद से, सुंदरता से, मान-अभिमान से, प्रतिष्ठा से कटकर अंतर्मन में समर्पित होना है। यह तभी संभव है जब इस पंचभौतिक तन को तपाओगे, इस नटखट मन को अपनी चिदाग्नि से शांत करोगे।

इस मन को परिधि से केन्द्र की तरफ ले जाओ, ताकि यह अंतर्मुखी हो सके। अंततः हम शून्य से महाशून्य में विसर्जित हो सकें। ❑

बुद्धि और प्रज्ञा

✍ **आचार्य श्री महाप्रज्ञ**

श्रीमद् भगवद् गीता (2.58) में कहा गया-

यदा संहरते चायं, कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
हे पार्थ ! ज्यों कछुआ समेटे अंङ्ग चारों छोर से।
थिर-बुद्धि जब यों इन्द्रियाँ सिमटें: विषय की ओर से॥

भीतर का अनुभव होता है: प्रज्ञा के द्वारा। बाह्य जगत का ज्ञान होता है बुद्धि के द्वारा। हम बुद्धि और प्रज्ञा के भेद को समझने का प्रयत्न करें। प्रज्ञा का संबंध अध्यात्म के साथ है और बुद्धि का संबंध व्यवसाय के साथ। बुद्धि बाह्य जगत में निर्णय करने वाली है और बड़ी महत्वपूर्ण है वह भी। किंतु अंतर्जगत् के साथ उसका संबंध कम है। एक प्रज्ञावान आदमी अपराध नहीं करेगा। बुद्धिमान आदमी अपराध कर सकता है। उसमें और दक्षता आ जाती है, तरीका और अच्छा खोज लेता है। जितनी दक्षता के साथ, जितने कौशल और एफिशियंसी (Effciency) के साथ एक बौद्धिक आदमी चोरी कर सकता है, अपराध कर सकता है: एक निर्बुद्धि आदमी कभी नहीं कर सकता। वह तरीके जानता ही नहीं है। बुद्धि का काम पदार्थ की सीमा तक है: बाह्य जगत की सीमा तक है।

प्रज्ञा अंतर्जगत की चेतना है।

प्रज्ञा कब जागृत होती है और कब स्थित रहती है?

जब इंद्रियां अपने विषयों से निवृत्त हो जाती हैं, तब प्रज्ञा जागृत होती है। जब व्यक्ति अपने सत्प्रयत्न के द्वारा इंद्रियों को संवृत कर लेता है: समेट लेता है, अपने भीतर ले जाता है तब प्रज्ञा का जागरण होता है। उदाहरण बहुत सुंदर दिया है कछुए का: कछुए की दो अवस्थाएं होती हैं:-

कछुआ अपने शरीर के अंगों को बाहर भी निकालता है और भीतर भी ले जाता है। जब कोई खतरा होता है और खतरे की भनक भी होती है: तो कछुआ अपने अवयवों का संगोपन कर लेता है। एक प्रसंग आता है दो कछुओं का :-

दो कछुए साथ थे। सियार आ गये। एक कछुए ने अपने अंगों को संकोचन किया और भीतर ले गया। भीतर ले जाने के बाद सियार कुछ भी नहीं कर सकते। किसी का वश नहीं चलता। एक ने प्रमाद किया। अंगों को भीतर नहीं किया। सियार झपट पड़े। उसका काम तमाम कर दिया।

सुरक्षा का साधन क्या है ?

कछुए की दो अवस्थाएं हैं :- संवृत अवस्था और मुक्त अवस्था।

मन की दो अवस्थाएं हैं :- बाहर की अवस्था और भीतर की अवस्था।

जो व्यक्ति अपने मन को भीतर की ओर ले जाता है: उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है। यह हमारा सुरक्षा का कवच है।

दशवैकालिक सूत्र में कहा गया: आत्मा की रक्षा करो-**अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो।** आत्मा की रक्षा कैसे करें ? उसके लिए क्या चाहिये ? आजकल रक्षा के लिये बड़े-बड़े शस्त्रों का विकास हुआ है। नये-नये शस्त्र सामने आ रहे हैं: सुरक्षा के लिये। आत्मा की रक्षा के

लिये कौन सा शस्त्र लें ? क्या टैंक के द्वारा सुरक्षा होगी ? सुरक्षा का साधन क्या है ? उत्तर दिया गया: **सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।** इंद्रियों को समाहित कर लो: आत्मा की सुरक्षा हो जायेगी। जब-जब इंद्रियां बाहर की ओर फैलती हैं: आत्मा असुरक्षित हो जाती है और जब-जब इंद्रियां भीतर की ओर जाती हैं: आत्मा सुरक्षित हो जाती है। ❑

असली मंजिल

✍ मास्टर श्री कंवर दास

कोई साधक कहता है कि ध्यान के समय मुझे बड़ा आनन्द आता है। कोई कहता है कि मुझे अजपा जाप होने लगता है। कोई अनहद नाद, घंटे बजना तो कोई तरह-तरह की ज्योतियों का दिखना कहता है। किसी को राम, कृष्ण, हनुमान, दुर्गा आदि भगवानों का दर्शन होने लगता हैं। तब साधक इन बातों में लग जाता है। इनमें फंस जाता है। इनको अपनी साधना की सफलता समझकर इनमें मस्त और व्यस्त रहने का आदि हो जाता है।

अपनी असली मंजिल आत्मा का परमात्मा से मिलन भूल जाता है। उसकी प्रगति वहीं रुक जाती है। बस इसी समस्या का कई साधक मेरे से पूछते थे: कि हमारी प्रगति रुक क्यों गई है?

हमें आनन्द, सुख, वैभव, ऋद्धि, सिद्धि आदि जो साधना द्वारा मिलनी ही मिलनी है: यदि उनके जाल में उलझ गए; उन्हें ही लक्ष्य बनाकर अपना स्वास्थ्य, कुटुम्ब, धन आदि को साधना के बल पर बढ़ाते गए: तो लक्ष्य की प्राप्ति में रूकावटें ही पैदा करते गए। ईश्वर, परमात्मा से तद्‌रूप होने वाली सफलता कठिन हो जाएगी। अर्थात् प्रगति रुक जाएगी।

गुरु वह है: जो आपके दोषों को बताकर, मिटाकर आपके हृदय में आत्म ज्ञान जगा दे। धर्म-अधर्म बता दे।

परोपकार, दया, तपस्या, संयम, नेक कर्म: ये सब व्यक्तिगत करने होते हैं। फिर इससे ही राष्ट्र, देश, समाज और पूरे विश्व का कल्याण हो जाएगा।

ईश्वर और तुम्हारे बीच में एक बहुत पतला झीना-झीना सा पर्दा है। इसे हटाना बहुत कठिन काम नहीं। ईश्वर तुम्हारी झोलियों में बहुत-बहुत नियामतें डाल रहा है। परन्तु तुम्हारी झोली फटी हुई है। उसमें से सब निकल जाता है। अपने दोषों को दूर करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो। बख्शे जाओगे। तुम्हारा जीवन बागो-बाग हो जाएगा। अपने दोषों को देखने के चार उपाय है :-

1. सत्संग में आना।
2. आपके सच्चे मित्र, हितैषी, गुरु, बुजुर्गों आदि के द्वारा बताने से।
3. तुम्हारी निन्दा करने वाले से। वह हमारे दोषों को बढ़ा-चढ़ा कर बताता है। **निंदक मेरा न मरो**'।
4. दूसरों की गलतियों से शिक्षा लेना।

यदि आप जीते जी मुक्त होना चाहते हैं: तो अपनी भटकनों को छोड़कर व्यर्थ के आडम्बरों में मत पड़ों। इंसान जैसा स्वय होता है: उसे वैसा वातावरण और साथी मिलते हैं।

हर प्रेम करने वाले की यह अनुभूति है कि उसे जिससे भी प्रेम होता है, उसके सम्पर्क में केवल एक तरह का सुख मिलता है। यही इस बात को प्रमाणित करता है कि प्रेम एक खास तरह के सुख का नाम है।

सुख क्या है?

सुख और दुःख की अनुभूति तो केवल मन और तरह-तरह के पदार्थों के सम्पर्क में है। जब यह सम्पर्क मन को भाता है तो हम उसे सुख कहते हैं। जब तक मन का किसी से सम्पर्क नहीं होता, सुख की बात, की ही नहीं जा सकती। यह सुख जो दो प्राणियों के आपस के सम्पर्क से उत्पन्न होता है: उसे प्रेम कहते हैं। **यह प्रेम की परिभाषा है।** इस सुख की शक्ति ही प्रेम की शक्ति है।

अखंड प्रेम का शब्दिक अर्थ है: प्रेम करने के तत्व की वह शक्ति: जो मन को अखंड द्वारा; दूसरे शब्दों में ईश्वर द्वारा मिलती है। ❑

हम अपने मन की शुद्धि के लिए दैनिक जीवन में क्या करते हैं ?

✍ श्री विजय कुमार अग्रवाल

ध्यान पर बैठने से मन में समाये हुए संस्कार कटते जाते हैं। मन मजबूत होते जाने के कारण नये संस्कारों का बनना भी कम होता जाता है। मन शुद्ध होता जाता है: अर्थात् मन परमात्मा की शक्ति के नजदीक होता जाता है। जितना नजदीक हो जाता है: उतना ही उस व्यक्ति का जीवन सुखमय हो जाता है। अधिकतर देखने में यह आता है कि व्यक्ति शरीर और बुद्धि की शुद्धि में तो लगा रहता है: लेकिन मन की शुद्धि के लिए कुछ नहीं करता। प्रत्येक व्यक्ति मन में समाये हुए संस्कारों की निकासी द्वारा अन्तःकरण शुद्ध करे। ताकि उसका जीवन प्रत्येक प्रकार से सुखमय (किसी भी क्रिया के प्रभाव से मुक्त) हो सके।

''मैं'' है तो 'हरि' नाहीं।
'हरि' है तो ''मैं'' नाहीं॥

जब तक हम कोई मन्त्र जाप चलाते रहेंगे अथवा कोई केन्द्र बिन्दु, रूप दर्शन करते रहेंगे: इसका मतलब यह होगा कि ''मैं'' कुछ कर रहा हूं। जब बाहर का होश बना रहता है: तब ही 'मैं' (Ego) क्रियात्मक रहता है। जब ध्यान के समय मन को स्वतन्त्र छोड़कर बैठ जाते हैं, उस समय बाहर का कोई सुख न होने की वजह से, मन-सुख की तलाश में अन्दर की दुनिया में चला जाता है: उस समय अन्दर का होश (Consciousness) पैदा हो जाता है, जिसके आधार पर अन्दर के संस्कारों की अनुभूति होने लगती है। बाहर का होश खत्म हो जाता है। इसी अवस्था को रामायण में कहा है कि 'जब हरि है: तब मैं नाहीं'। अन्दर की दुनियां में हरि तो है, लेकिन अन्दर की दुनियां में बाहर की जाग असम्भव होने की वजह से 'मैं' खत्म हो जाता है। उस समय जो होता है: वह केवल ईश्वरी शक्ति ही करती है। इसका मतलब यह है कि जब ''मैं'' कुछ नहीं करता: तब हरि अपना रंग लाता है। इस प्रकार जब मन स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता है। तब वहां मैं (Ego) नहीं रहता। फिर अन्दर जो कुछ होता है: वह हरि करता है। जब हरि-हरि ही रहता है: तब अन्दर और बाहर चारों तरफ बहार रहती है।

जब हम आँख मींचकर इस प्रकार बैठते हैं और बाहर की लगभग सभी इन्द्रियां कार्य करना बन्द कर देती है: तब मन परमात्मा की सतह (अन्दर के क्षेत्र) में गोते लगाता है। अर्थात् परमात्मा की शक्ति जिसको ईश्वरी शक्ति या अखण्ड शक्ति भी कहते हैं: उनके नजदीक जाता है और उसको बार-बार छू कर आता है, जिससे हमारे मन, बुद्धि एवं परमात्मा के बीच की दूरी कम हो जाती है। और बीच में जो संस्कार भरे होते हैं नये एवं पुराने: वे निकल जाते हैं। इस बीच जो मन संस्कारों में मंडराता है अर्थात् विचारों में घूमता एवं डोलता है: इसका मतलब यह नहीं है कि

अन्दर संस्कार बन रहे हैं या बढ़ रहे हैं: बल्कि ध्यान-योग के समय मन अन्दर गहराई में बैठे हुए संस्कारों को उभार रहा है अर्थात् निकाल रहा है। जिससे संस्कार कटते एवं क्षीण होते जाते हैं। जिस प्रकार रात्रि में सोते समय स्वप्नों के द्वारा विचार के रूप में संस्कार निकलते हैं अर्थात् सोते समय स्वत: ऊटपटांग विचारों द्वारा संस्कार स्वप्न के रूप में निकलते हैं। इसका तात्पर्य यह होता है कि मन अन्दर के क्षेत्र में है। ठीक इसी प्रकार न चाहते हुए भी जब स्वत: ऊटपटांग विचार निकलते हैं: इसका तात्पर्य यह है कि उस समय मन अन्दर के क्षेत्र में है। जैसे-सफाई करते समय जब कमरे में से गर्द उड़ती है: तो इसका मतलब यह है कि कमरे के अन्दर सफाई हो रही है। रात्रि में स्वप्न आते ही हैं, किन्तु कभी हमें इसका आभास होता है? और कभी नहीं। ठीक इसी प्रकार ध्यान-योग के समय विचार निकलते ही हैं, कभी हमें उसका एहसास होता है। कभी नहीं। अत: संस्कार निकलते अथवा न निकलते प्रतीत होने से घबराना नहीं चाहिए।

> **हमको ध्यान पर बैठते समय विचार निकलते तो दीखते हैं: लेकिन भगवान की शक्ति से मिलन प्रतीत नहीं होता। वास्तव में मन हमेशा सुख में लगता है। जब मन इस प्रकार बैठने में लगता है: इसका तात्पर्य यह है कि मन को अन्दर के क्षेत्र में सुख की अनुभूति हो रही है। धीरे-धीरे वह सुख की अनुभूति बढ़ती जाती है। वह अनुभूति ही परमात्मा की शक्ति का मिलन है।**

अर्थात् परमात्मा की शक्ति का उभार है: यही ध्यान-योग है। अत: मन संस्कार रहित हो जाता है और धीरे-धीरे मन निर्मलता की ओर बढ़ता है। अर्थात् परमात्मा की शक्ति के नजदीक बढ़ता जाता है। ❑

अपने भीतर उतरना ही: मैडिटेशन

✍ **स्वामी श्री विश्वास**

अपने ही भीतर उतरना है। भीतर का वह जगत जहां असीम आनंद है, शांति है और मस्ती है। आज तक के जीवन में सदा बाहर के दोनों नेत्रों से ही काम लेते आए हैं। परन्तु अब हमें भीतर की ओर उतरना है। अपने ही अंतस में उतरकर, स्वयं की खोज (तलाश) में उतर जाना है।

मैडिटेशन वह बेशकीमती सम्पदा है। जिसे हम जन्म से ही अपने साथ लेकर आए हैं। परन्तु जन्म के पश्चात जगत में आते ही यह परमधन बाहर की ओर बहने लगा और भीतर के जगत में अन्धेरा छा गया। मैडिटेशन जागे पुरुषों के भीतर से निकली हुई वह दुआ (प्रार्थना) है: जो बिना किसी औषधि के जीवन को स्वस्थ बनाती चली जाती है।

अंतस का ध्यान : मैडिटेशन यह कोई हठयोग, क्रियाकांड या योग नहीं: यह तो हमारा स्वभाव है। इसलिए इसमें उतरना कोई कृत्य नहीं: यह सहजतम है। मैडिटेशन की सहज क्रिया में उतरकर जब इंसान अपनी दोनों पलकों को मूंदकर भीतर की ओर जोड़ता है: तो ऊर्जा का ८० प्रतिशत प्रवाह बाहर से हटकर भीतर की ओर अपने स्त्रोत से जुड़ने लगता है। ऊर्जा अपने स्त्रोत से जुड़कर शुद्धतम रूप ले लेती है और अंग प्रत्यंक पर उतरकर ही सबको स्वस्थ करती चली जाती है। इसलिए मैडिटेशन ही जीवन की परिपूर्णता है।

क्यों यह हमारे मनस तल, बौद्धिक तल व शारीरिक तल तीनों पर अपना प्रभाव जमाती हुई जीवन को सुखमय, प्रेममय, आनंदमय बनाती चली जाती है? यह बौद्धिक तल पर उतरती है तो तीव्र बनाती है।

मनस तल पर उतरती है तो शांत बनाती है और शारीरिक तल पर उतरती है तो स्वस्थ बनाती है। भीतर की यह गिज़ा (खुराक) यह अनमोल दावत जागे पुरुषों के द्वार पर दवा नहीं भीतर की दुआ मिलती है। इसमें उतरते ही इंसान स्वयं ही परम स्वास्थ्य का मालिक हो जाता है।

तनावग्रस्त जीवन में मैडिटेशन

आज की इस दौड़ धूप एवं आपाधापी के जीवन में हर इंसान टैन्शन (Tention), सट्रैस (Stress) से ग्रसित है: क्योंकि ध्यान की महान रोशनी जिसके प्रकाश में यह मन-बुद्धि कर्म करता है: वह सारी बाहर की ओर ही प्रवाहित होती चली जा रही है। इसलिए इतने बड़े-बड़े शिखरों को पाकर भी भीतर अंधेरा है: भीतर सब खाली है।

जीवन में मैडिटेशन की महत्ता

जीवन मे ंएक बात अच्छी तरह से समझ लेना: कि जीवन की आभा भीतर से जन्म लेती है: भीतर के पहलू के विकास के साथ-साथ बाहर का पहलू स्वत: ही विकसित होता चला जाता है।

इसलिए ऐ इंसान ! अपने भीतर उतरकर, स्वयं की ओर बढ़ते चले आना। मैडिटेशन की इस गिज़ा को जीवन का अंग बना लेना। अपनी सुरति को अपने ऊपर उडेलकर अपना कल्याण कर लेना: कृत्कृत्य हो जाओगे। ❑

नित्ययोग तथा उसका अनुभव

✍ स्वामी श्री रामसुखदास

प्रकृति और पुरुष-दोनों को ही अनादि कहा गया है-

प्रकृति पुरुष चैव विद्धयनादी उभावपि' (गीता 13.19)

अनादि होते हुए भी दोनों का स्वभाव अलग-अलग है। प्रकृति में तो निरन्तर क्रिया होती है; किन्तु पुरुष में क्रिया होती ही नहीं। प्रकृति की सूक्ष्म क्रिया: अक्रिय अवस्था में भी कभी बन्द नहीं होती। जैसे, हम कभी जागते हुए काम-धंधा करते हैं और कभी सब काम-धंधा छोड़कर नींद लेते हैं। नींद में भी एक क्रिया नींद के पकनेकी होती है। और एक क्रिया थकावट मिटकर ताजगी आनेकी होती है। नींद लेते समय कोई बीच में ही हमें जगा देता है: तो हम कहते हैं कि कच्ची नींद में जगा दिया। इससे सिद्ध होता है: कि नींद में भी पकनेकी क्रिया होती है।

प्रकृति कभी निष्क्रिय नहीं होती। जाग्रत में, स्वप्न में, सुषुप्ति में, मूर्च्छा में, समाधि में: हर समय प्रकृति में क्रिया होती रहती है। मन, बुद्धि, इन्द्रियां, शरीर, धन, सम्पत्ति, वैभव आदि तथा तारे, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, समुद्र आदि जितना दृश्य (प्रकृतिका कार्य) दीखता है: सबमें प्रतिक्षण क्रिया हो रही है। इस प्राकृत क्रिया में उत्पत्ति और विनाश का एक क्रम (प्रवाह) चलता है; और यह क्रम ही स्थिति रूप से दीखता है। वास्तव में स्थिति है नहीं।

परमात्मतत्व और अपने स्वरूप में क्रिया नहीं है। ये सदा ज्यों-के-त्यों रहते हैं।

प्रकृति की प्रत्येक क्रिया हमारे स्वरूप से निरन्तर अलग हो रही है और अलग है। यह सबका अनुभव है कि बालकपन में मैं ऐसा करता था ओर आज मैं ऐसा करता हूं। परन्तु बालकपन में मैं जो था: वही मैं आज हूं। बालक से जवान और जवान से बूढ़ा हो गया-यह प्राकृत क्रिया हुई और मैं वही हूं-यह अक्रिय स्वरूप हुआ।

शरीर के साथ अपना सम्बन्ध मानना ही अज्ञान है; और

शरीर को स्वयं से सर्वथा अलग अनुभव कर लेना ही ज्ञान है-

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥ (गीता 13.2)
हे पार्थ ! क्षेत्रों में मुझे क्षेत्रज्ञ जान: महान तू।
हे अर्जुन ! तू सब क्षेत्रों में जीवात्मा भी मुझे ही जान।

साधक को ऐसा अनुभव करना चाहिये: कि जितनी भी क्रिया होती है: वह सब शरीर में ही होती है। उम्र भी शरीर की ही होती है। स्वयं की उम्र नहीं होती। स्वयं को काल नहीं खाता। स्वयं में कोई क्रिया नहीं है। वह सम्पूर्ण क्रियाओं का साक्षी है। ❑

ध्यान माला

✍ **श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'**

दोहा-32 : करे साधना बुद्धि - तन, 'कर्मकाण्ड' बहिरंग।
ध्यान सहित जो करे: है 'उपासना' ढंग॥

बुद्धि के नियंत्रण में अर्थात् खंड की शक्तियों के बौद्धिक ज्ञान द्वारा उचित और लाभकर समझ कर सकाम भाव से कर्म करना 'कर्मकाण्ड' की साधना है।

ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा जिसका मन ब्रह्म-तत्व से सम्पर्क करता रहता है और ध्यान के बाद जो बाह्य-जगत में स्वाभाविक क्रिया करने की ओर उन्मुख रहता है, ऐसी साधना को उपासना कहते हैं।

कर्मकाण्ड व्यक्ति बहिर्मुखी रहता है और उपासना में अन्तर्मुखी होने लगता है।

दोहा-33 : आनंद सुख को जीत कर, अर्न्तमुख ले जाय।
'ज्ञानकाण्ड' की साधना, होती सहज सुभाय॥

कर्मकाण्ड की साधना से केवल बाह्य सुख मिलते हैं, जो अन्त में दुखद हो जाते हैं। उपासनाकाण्ड की ब्रह्म-सुख (आनंद) विकसित करने वाली साधना अन्तर्मुखी और प्रयासहीन है। उपासना की साधना अधिक प्रगाढ़ होने पर साधक ऐसी अवस्था में पहुंच जाता है: जब भीतर के आनन्द और बाहर के सुख में मन को अपनी-अपनी ओर खींचने की खींचा-तानी होने लगती है। साधक अगर साधना में लगा रहा; तो आनन्द धीरे-धीरे सुख से जीतने लगता है और साधक अधिक समय तक अन्तर्मुखी रहने लगता है। इस साधना में: और प्रगति होने पर स्वयं आनन्द (ब्रह्म) साधक से साधना कराने लगता है। साधक को सोचकर समय निकाल कर साधना नहीं करनी पड़ती। साधकपूर्ण रूप से प्रयासहीन अवस्था में उच्च-स्तर की साधना में अग्रसर हो जाता है। यही ज्ञानकाण्ड की साधना की अवस्था है।

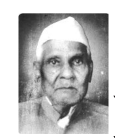

दोहा-34 : अगर बुद्धि औचित्य ही, हो साधन आधार।
सदा द्वैत में ही रहे, अति दुस्तर निस्तार॥

बुद्धि जिसे उचित समझे उसे करना और जिसे अनुचित समझे उसे न करना ही यदि साधना का आधार होगा, तो बुद्धि के नियंत्रण में किये गये ऐसे सभी कार्य द्वैत के क्षेत्र में ही होंगे और वे अद्वैत-तत्व ब्रह्म या भगवान की शक्ति-प्राप्ति में तनिक भी सहायक नहीं होंगे। इसीलिये इस प्रकार की साधना से साधक का कल्याण नहीं होता। अष्टावक्र गीता (1.4) के अनुसार अष्टावक्र जी राजा जनक को समझाते हैं :-

यदि देह पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तः अन्धुमुक्तो भविष्यति॥

''यदि तुम शरीर को पृथक कर के तथा चैतन्य आत्मा में विश्राम पूर्वक स्थित हो: तो तुम अभी ही: सुखी, शान्त तथा बन्धन-मुक्त हो जाओगे।''

ध्यान द्वारा प्रभु साक्षात्कार

मनुष्य के पास दो प्रकार के जगत हैं: बाहर का जगत और अन्दर का जगत। ईश्वर का निवास अंतर्जगत में है। मन एक ऐसी शक्ति है जो बाहर और भीतर दोनों तरफ विचरण कर सकती है। ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए मन को अन्दर की दुनिया में जाना होगा। सोते हुए भी एक प्रकार से मन अन्दर जाता है, परन्तु सिर्फ सतह तक और बहुत कम अंतराल के लिए। इससे केवल दिनभर कार्य करने की शक्ति मात्र प्राप्त होती है। यदि प्रभु का साक्षात्कार करना है: तो जागते हुए मन को ईश्वरीय क्षेत्र में लेकर जाना होगा। इसी प्रक्रिया को ध्यान कहते हैं।

हमारे भीतर अनेक प्रकार के विचारों का समावेश है। धीरे-धीरे ध्यान करते हुए मन अंतर्जगत में गहरे से गहरा विचरण करने लगेगा। ऐसा होने पर ईश्वरीय गुण उभरने लगेंगे। ईश्वर के तीन गुण-सत्, चित और आनन्द हैं। आत्मोत्थान के इस मार्ग पर साधक की चेतना का उत्थान होने लगता है और उसे अक्षय आनन्द की प्राप्ति होने लगती है।

ध्यान एक ऐसी प्रक्रिया है: जो अपने आप ही होती है। इसमें प्रयास की आवश्यकता नहीं है, यह सहज प्रक्रिया है। ईश्वर का साक्षात्कार करने की प्रक्रिया में प्रयास तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि जो प्रयास से प्राप्त होता है, उसमें मनुष्य का अहंकार आरोपित रहता है। ईश्वर का साक्षात्कार तो अहम् को मिटाकर ही होता है। ईश्वरीय क्षेत्र (अंतर्जगत) शक्तिशाली क्षेत्र है, तो मन को वहां पर हम अपने प्रयास से विचरण नहीं करा सकते हैं। सहज ईश्वरीय ध्यान द्वारा प्राप्त आनन्द के निए भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है :-

> **''जिस प्रकार बड़े जलाशय की प्राप्ति पर, छोटे जलाशय की आवश्यकता नहीं रहती, उसी प्रकार ब्रह्मानन्द को प्राप्त व्यक्ति के लिए, अन्य स्त्रोतों की आवश्यकता नहीं रहती।''**

इस प्रकार मनुष्य ध्यान से स्वयं को उत्थान के मार्ग पर अग्रसर कर सकता है, जहां उसे ईश्वरीय अनुभूति होती है।

मन का विकास

हम सबके अन्दर एक जीवातमा (परमात्मा की शक्ति का सागर) है। परमात्मा की शक्ति संस्कारों से छन-छन कर, निरन्तर हमारे मन को मिलती रहती है। ये संस्कार मन, बुद्धि, शरीर एवं वातावरण के स्तर पर: क्रिया- प्रतिक्रियां के द्वारा, आयु बढ़ने के साथ-साथ बढ़ते रहते हैं। ये बढ़ते हुए संस्कार मन के अन्दर, घने बादलों का रूप लेने लगते हैं। इससे जीवात्मा का प्रकाश मन को शनै-शनै कम मिलने लगता है।
मन: शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक रूप से बीमार रहने लगता है। पतन के रास्ते पर (अर्थात् संस्कार बनें अधिक और निकलें कम): हम अपने जीवन को पूर्ण रूप से दु:खों से भर लेते हैं ओर जीवात्मा की शक्ति शून्य होने पर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

''बड़े भाग्य मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ मन ग्रन्थहिं गावा।''

जीव, केवल मनुष्य योनी में संस्कारों के कर्म बन्धनों से मुक्त होकर (जीवात्मा व मन का पूर्ण विकास करके) ईश्वर स्वरूप बन सकता है व इच्छानुसार मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। इसके लिए ''ध्यान'' की ठीक शिक्षा को समझना अनिवार्य है।

योगस्थ: कुरू कर्माणि

ध्यान द्वारा मन का पूर्ण विकास सम्भव है। ध्यान द्वारा मन अन्दर की दुनियां में विचरण करता है। अन्दर की दुनियां में विचरण करने से मन में भरे संस्कार बाहर निकलते हैं। मन जीवात्मा के नजदीक रहकर, ध्यान

के समय: ब्रह्म सागर में गोते लगाकर, ब्रह्म तत्व, पिरोने में निपुण हो जाता है। ध्यान द्वारा ब्रह्म तत्व मन में पिरोने से: मन में सत्, चित्त और आनन्द के गुण उभर आते हैं। ध्यान करने वाला व्यक्ति अन्दर की पूर्ण चेतना शक्ति (चित्त, Consciousness) व अन्दर का सुख (आनन्द, Bliss) लेकर: बाहर की क्रियाओं को सफल बनाता है अत: स्वर्ग का जीवन जीता है। इस प्रकार ध्यान मन के विकास का रास्ता हुआ।

सभी मनुष्यों के पास तीन चीज़ें होती हैं: वो हैं मन, बुद्धि और शरीर। हमें इन तीनों के विकास की शिक्षा चाहिए। आध्यात्मिक शिक्षा की कमी के कारण (बिना मन के विकास के) केवल बुद्धि और शरीर के विकास की अधूरी शिक्षा आज के युग की देन है। जबकि बुद्धि और शरीर के संपूर्ण विकास का आधार: मन की शक्ति या जीवात्मा की शक्ति (Mental Potential) ही होती है। इस प्रकार बिना मन के विकास के सारे भौतिक विकास दुखदाई होते हैं।

ईश्वर के ध्यान से मन की चेतना शक्ति निरन्तर बढ़ती है। इससे बाहर की परिस्थितियों व क्रियाओं का प्रभाव मन पर ऐसा पड़ता है: जैसे पानी पर खींची लकीर। ऐसी अवस्था में संस्कार रूपी मन के बादल निकलते बहुत ज्यादा हैं और बनते बहुत कम हैं। इस प्रकार संस्कार निरन्तर कम होने के कारण मन: भावातीत अर्थात् ब्रह्म सागर के नजदीक रहने लगता है। यह विचारों की शक्ति का उदगम् स्थान है। यहां ईश्वर की भरपूर शक्ति होने के कारण: विचार आते ही कार्य होने लगते हैं। मन की ऊंची चेतनाओं को ब्रह्मी चेतना (Cosmic Consciousness), ईश्वरीय चेतना (God Consciousness) और अद्वैत चेतना (Unity Consciousness) के नाम से जाना जाता है। मन के विकास के रास्ते पर ब्रह्मार्चय (ब्रह्म की दुनिया में विचरण) करते हुए गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास का जीवन भी उत्थान कारी होता है। यही जीवन जीने की कला है। ❑

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 5 बजे से 7 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्प्लैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER